International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारत - एक सनातन संस्कृति

Dr. Sarla Jangir

Associate Professor, Hindi, Hindusthan College of arts & science

Abstract

भारत केवल एक देश नहीं–एक विचार है, एक साधना है- एक महादेश की ।

'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोहम्।
महामङ्गले पुण्यभूमे त्वदर्थे पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते॥'1

भावार्थ: हे स्नेहपूर्ण मातृभूमि, तुम्हें सदा नमस्कार। इस पुण्य भूमि पर पलकर मैं तुम्हें अपना शरीर अर्पण करता हूँ।
भारत केवल एक देश नहीं—एक विचार है, एक साधना है- एक महादेश की |
आज भारतीय संस्कृति के उन स्वर्णिम पृष्ठों को याद करते हैं, जो हमारी अस्मिता के आधार हैं। भारत की गहरी सांस्कृतिक धारा आध्यात्मिकता और दार्शनिकता की जड़ों की पड़ताल करती है।
'मित्राणि धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।'2
वाल्मीकि जी रामायण में इस श्लोक का वक्तव्य श्री राम के मुख से किया है | इसका अर्थ है कि मित्र , धन्य और धान्या का आदि का संसार में बहुत सम्मान है, किन्तु माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी बढ़कर है। भारत की पहचान केवल उसकी विविध संस्कृति में नहीं, बल्कि ज्ञान और कर्म के उस अद्भुत समन्वय में है, जो राष्ट्रीय आत्मसम्मान पर केंद्रित है।
यह गाथा सिर्फ एक देश नहीं बल्कि जिसकी पहचान उसकी विविध संस्कृति, आध्यात्मिक प्रथाओं, दार्शनिकता और ज्ञान (ज्ञान) तथा कर्म (कर्म) के एकीकरण में निहित है | ज्ञान और कर्म का सुंदर उदाहरण हमारे गीता का उपदेश है | इस भारत भूमि पर जन्म लेने वाले महान विभूतियों ने प्रत्येक हृदय में राष्ट्रीय गौरव का पुनर्जागरण करते हुए भारत को एक देश के रूप में परिभाषित न करते हुए उसे महादेश के रूप में प्रतिस्थापित किया है | भारत- भूमि का अर्थ , मिट्टी से नहीं बल्कि इस भूमि में निहित मानवीय मूल्यों (त्याग, बलिदान, साहस, देशप्रेम, दान और कर्तव्य- भावना आदि) पर आधारित एक ऐसी भावना उत्पन्न करना है जो राष्ट्रीय आत्मसम्मान पर केन्द्रित हैं |
"भरत" नाम को एक विशिष्ट नाम (दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र राजा भरत के नाम पर) और एक उपाधि दोनों के रूप में वर्णित किया गया है। व्युत्पत्ति के अनुसार, इसका अर्थ है..."**वह जो धारण करता है या पोषण करता है |**"देश को एक ऐसे देश के रूप में चित्रित किया गया है जो सभी के लिए सब कुछ उपलब्ध कराता है, जहाँ "भारत वर्ष" के नागरिक पोषण और शक्ति प्राप्त करते हैं। हमारे महादेश की परिभाषा केवल भूगोल से ही नहीं बल्कि इसकी विशेषताओं से भी है। भारत की पहचान केवल उसके धर्मग्रंथों में ही नहीं बल्कि उसके मूल्यों में भी निहित है। विचार और आचरण का एकीकरण हमारे यहाँ की महान विभूतियों से मिल जाता है | जैसे- स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, महात्मा बुद्ध आदि, जिनका उद्देश्य प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण के साथ पारंपरिक भारतीय मूल्यों का विश्लेषण करना है। आज के संदर्भ में यह सबक याद दिलाते हुए समावेशिता, बौद्धिक खोज और निस्वार्थ सेवा एक पुनर्जीवित राष्ट्रीय पहचान के

मार्ग के रूप में,ये हमारे भारत वर्ष की जड़ों में पहले से विद्यमान है | विष्णु पुराण के इस श्लोक में तो यहाँ तक संदर्भित किया है कि इस भारत- भूमि पर जन्म लेने के कारण हम भारतीय अपने आप ही श्रेष्ठ हो गए |

‘ गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥’3

विष्णु पुराण के इस श्लोक का भावार्थ है कि भारतवर्ष 'कर्मभूमि' है। अन्य लोकों में प्राणी केवल अपने पुण्यों का भोग करते हैं, लेकिन भारत में जन्म लेकर ही मनुष्य शुभ कर्मों के द्वारा मोक्ष (स्वर्ग और अपवर्ग) प्राप्त कर सकता है। इसी कारण देवता भी यहाँ मनुष्य रूप में जन्म लेने की इच्छा रखते हैं।

यह भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत का एक व्यापक अन्वेषण है।। आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रकांड विद्वान, **'साहित्य अकादमी पुरस्कार'** (संस्कृत) से भी सम्मानित डॉ. रमाकांत शुक्ल ने इस महादेश की महिमा का बखान एक संस्कृत गीत में किया है |

‘भाति से भारतम्, भाति भाति से भारतम्
भूतले भातिमेऽनारतम भारतम्|’4

यहाँ शुक्ल जी ने भारत देश का मानवीकरण किया है, जिसमें भारत देश को भूमंडल (धरती) पर निरंतर (लगातार) शोभायमान बताया है, और इसमें विभिन्नताओं (भाति-भाति) हैं । यह गीत भारत की विविधता, महिमा और गौरव का बखान करता है। भारत को महज एक राजनीतिक इकाई से कहीं अधिक रूप में चित्रित किया गया है| यह एक **"महादेश”** अपने लोगों की तपस्या और समर्पण पर आधारित है। सांस्कृतिक विविधता देश को जीवंत और सक्रिय बनाए रखती है। उनके अनुसार महादेश का सार करुणा, कृतज्ञता और अहिंसा में निहित है | जहां आध्यात्मिक ज्ञान का अर्थ केवल उपदेश देना नहीं, बल्कि उसे जीवन में उतारना है।

‘मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।
गुण बड़े एक से एक प्रखर,
हैं छिपे मानवों के भीतर|’5

रामधारी सिंह दिनकर ने भी रश्मिरथी में इसी भाव को दर्शाया है | हमारी इस पुण्य भारत भूमि पर जन्म लेने वाले भी अपने में एक तेज लिए पैदा होते हैं | इस मातृभूमि का एक लाल(स्वामी विवेकानंद) अगर वेदांत की शिक्षा देता है, तो दूसरा (महात्मा बुद्ध)अहिंसा और करुणा का | एक (महाराणा प्रताप) जो अपनी भुजाओं के बल पर सबको नत करा सकता है , तो दूसरा(महात्मा गाँधी) सिर्फ अपनी एक लाठी के बल पर निर्भय होकर आगे बढता है | दशरथ मांझी ने पहाड़ को अकेले काटकर रास्ता बना दिया, तो दूसरी ओर जालव पायेंग ने 1360 एकड़ में जंगल ही फैला दिया |

जब हम अपनी मातृभूमि का वंदन करते हैं, तो वह केवल शब्द नहीं, बल्कि हमारी आत्मा का उद्घोष होता है। इसी आध्यात्मिक और दार्शनिक श्रेष्ठता को राष्ट्रकवि **मैथिलीशरण गुप्त** जी ने अपनी कालजयी पंक्तियों में बड़े सुंदर ढंग से पिरोया है:-

"भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका की जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।"6

गुप्त जी की ये पंक्तियाँ भारत की श्रेष्ठता का आधार इसका 'ऋषिभूमि' होना है, जहाँ हिमालय जैसी ऊँची सोच और गंगा जैसी पवित्र मर्यादा का संगम है। मैथिलीशरण गुप्त ने जब **'भारत-भारती'** की रचना की, तो उनका मुख्य उद्देश्य

सोए हुए भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत की याद दिला कर जगाना था, क्योंकि उस समय देश ब्रिटिश दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और भारतीयों में हीन भावना घर कर गई थी।

राष्ट्रीय जागृति (राष्ट्रबोध) एवं राष्ट्रीय गौरव (राष्ट्रीय स्वाभिमान) देश के प्रभुत्व के कारण नहीं, बल्कि अपने गहन दार्शनिक समाधानों और प्रेम एवं स्नेह के माध्यम से शत्रुओं को भी परिवार में परिवर्तित करने की क्षमता के कारण "विश्व गुरु" (विश्व शिक्षक) के रूप में देखा जाता है। गुप्त जी भारतीय ग्रंथों से लगाव और संस्कृति के प्रति निष्ठा उनके जीवन के सकारात्मक दृष्टिकोण से लेकर कागज के पन्नों पर भी दृष्टिगत होता है |

जयशंकर प्रसाद जी ने भी भारत को ज्ञान के आलोक और मानवीय आदर्शों की भूमि के रूप में चित्रित किया है:

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को,
मिलता एक सहारा।”7

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित ज्ञान के भंडार के महत्व, जो अक्सर धन, ज्ञान और जीवन में उनके संबंधित मूल्यों से संबंधित नैतिक चर्चाओं से जुड़ा होता है। यह भौतिक संपदा पर बौद्धिक संपदा की स्थायित्व और श्रेष्ठता की याद दिलाता है, जिससे यह आध्यात्मिक और शैक्षिक दोनों संदर्भों में महत्वपूर्ण हो जाता है। बचपन में अपने बड़े- बुजुर्गों से सुना है, कि प्राप्त और अर्जित धन में कोई भी हिस्सा करवा सकता है, यश- अपयश, मान- सम्मान भी अधिकतर धन के ही आधीन होते हैं | इस मानव जीवन में प्राप्त कुछ भी शाश्वत और नियमित नहीं है, लेकिन विद्या का धन ही एक ऐसा धन जिसे कोई चुरा नहीं सकता, इस पर कोई अधिकार नहीं कर सकता , बल्कि ये तो खर्च करने पर दुगुना बढता है | मृत्यु भी इसे अलग नहीं कर सकती है |

ज्ञान की खोज एक सद्गुण है और इसमें निवेश करने से निरंतर लाभ प्राप्त होता है, जिससे यह धन का सर्वोच्च रूप बन जाता है। बौद्धिक संपदा की श्रेष्ठता पर बल देते हुए, यह श्लोक धन से जुड़ी नैतिक जिम्मेदारियों की ओर भी संकेत करता है। इसका तात्पर्य यह है कि सच्ची समृद्धि भौतिक संपत्ति जमा करने से नहीं, बल्कि ज्ञान और विद्या अर्जित करने से आती है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए अपरिहार्य हैं। यही वक्तव्य संस्कृत के श्लोक में भी है -

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्या धनं सर्वधनप्रधानम्॥8

'भारत-गाथा' मात्र एक ऐतिहासिक विवरण नहीं, बल्कि हम भारत वासी लोगों की आत्मा का वह संगीत है जो सदियों से इस पुण्य धरा पर गूँज रहा है। भारतीय संस्कृति हमें उस बोध से साक्षात्कार कराती है जहाँ राष्ट्र का अर्थ केवल सीमाओं का विस्तार नहीं, बल्कि उन मानवीय मूल्यों, त्याग और प्रज्ञा का संचय है जिसने आदिकाल से ही 'विश्व' को दिशा दिखाई है। भारतीय साहित्य मनीषियों ने जिस सूक्ष्मता से भारतवर्ष की सुंदरता और उसकी महत्ता को उकेरा है, वह आज के संक्रमण काल में एक मार्गदर्शक स्तंभ की भाँति है, जो हमें अपनी खोई हुई सांस्कृतिक अस्मिता और आत्मसम्मान को पुनः पहचानने की प्रेरणा देता है।

वास्तव में, यह लेख उस 'भा-रत' (ज्ञान में लीन) स्वरूप की वंदना है, जहाँ भौतिक संपदा को सदा बौद्धिक और आध्यात्मिक संपदा के सम्मुख गौण माना गया है। प्रत्येक संवेदना इस सत्य को पुष्ट करता है कि भारत की श्रेष्ठता उसके किसी प्रभुत्व में नहीं, बल्कि उसके उन दार्शनिक समाधानों और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में निहित है, जो शत्रुओं को भी आत्मीयता के सूत्र में पिरोने का सामर्थ्य रखती है। यह लेख, वर्तमान पीढ़ी के समक्ष एक जीवंत आदर्श प्रस्तुत करता है कि कैसे हम अपनी जड़ों से पोषण प्राप्त कर आधुनिकता के आकाश में नई ऊँचाइयों को छू सकते हैं। अंततः, यह निष्कर्ष केवल एक अध्याय का अंत नहीं है, बल्कि एक नए संकल्प का उदय है—एक ऐसा संकल्प जो हमें

समावेशिता, निस्वार्थ सेवा और ज्ञान की उस अखंड ज्योति की ओर ले जाता है, जिसने भारत को सदैव 'विश्व-गुरु' के गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित रखा है। यह महादेश अपनी इसी सांस्कृतिक शुचिता और कर्मनिष्ठा के बल पर न केवल अपना, बल्कि संपूर्ण मानवता का कल्याण सुनिश्चित करने का सामर्थ्य रखता है।

भारतीय वाङ्मय के क्षितिज पर 'भारत' केवल एक भौगोलिक रेखाओं का रेखांकन नहीं, अपितु एक शाश्वत चेतना, सकारात्मक, सत्यता और आध्यात्मिक ऊर्जा का वह पुंज है, जो युगों-युगों से संपूर्ण मानवता को प्रकाशित कर रहा है। जहाँ विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताएं भौतिक संचय और साम्राज्यवादी लोलुपता की सोच के कारण कोलाहल में विलीन हो गईं, (जैसे- रोमन साम्राज्य, इंका सभ्यता, मेसोपोटामिया सभ्यता आदि), वहीं भारत ने आत्म-साक्षात्कार को ही जीवन का चरम ध्येय स्वीकार किया। हमारी श्रेष्ठता का वास्तविक अधिष्ठान सैन्य शक्ति या स्थूल वैभव नहीं, अपितु 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (त्यागपूर्वक भोग) की वह उदात्त जीवन पद्धति है, जिसने चक्रवर्ती सम्राटों को भी आत्मज्ञानी ऋषियों के सम्मुख अहं को तज नतमस्तक होना सिखाया। भारत की अस्मिता उस अंतर्निहित एकात्मता में स्पंदित होती है, जो जड़-चेतन के प्रत्येक कण में ईश्वरीय सत्ता (राम, श्रीकृष्ण के जन्म का प्रमाण धनुषकोटि और कुरुक्षेत्र में दिखने को मिलता है) का दर्शन करती है। हमारा इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि हमने कभी विश्व के किसी भी भू-भाग को विजित या आधिपत्य स्थापित करने के लिए कृपाण नहीं उठाई, अपितु संपूर्ण विश्व के मानस को जीतने के लिए उपनिषदों का अमृत और बुद्ध की करुणा का वितरण किया। इस पुण्य धरा का एक संस्कार 'अतिथि देवो भव' केवल एक शिष्टाचार नहीं है | इस भारत - भूमि की नदियों का जल प्रवाह कोटि-कोटि जनों की आस्था और सांस्कृतिक शुचिता की अविराम धाराएँ हैं।

आज के इस संक्रमण काल में, जब वैश्विक समाज यंत्रवत जीवन और अर्थहीन भौतिकता की अंधी सुरंग में अपनी मौलिक पहचान खो रहा है, भारत का 'ऋषि-बोध' उसे पुनः स्वयं से साक्षात्कार कराने का अद्वितीय सामर्थ्य रखता है। हमारी आधुनिकता हमारे पुरातन मूल्यों की प्रतिरोधी नहीं, अपितु उनकी सहज अनुगामी है। यह भारत-गाथा हमें प्रेरणा देती है कि हम वैश्विक नागरिकता के आकाश में उड़ान भरते हुए भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से विमुख न हों, क्योंकि कोई भी वृक्ष अपनी जड़ों की गहराई के अनुपात में ही ऊँचाइयों को स्पर्श करने का साहस जुटा पाता है। भारत का पुनरुत्थान किसी संकुचित राष्ट्रवाद का उद्घोष नहीं, अपितु समग्र मानवता के परित्राण का एकमात्र प्रशस्त मार्ग है। यह वह महादेश है जिसने 'स्व' की संकीर्णता से ऊपर उठकर 'सर्व' की मंगल-कामना को प्रतिष्ठित किया और निजी स्वार्थों की आहुति देकर लोक-कल्याण की वेदी को प्रज्वलित रखा। अतः हमारा संकल्प मात्र एक आर्थिक महाशक्ति बनना नहीं, अपितु उस 'नैतिक ध्रुव' के रूप में स्वयं को स्थापित करना है, जो दिशाहीन मानवता को शांति, संतोष और सामंजस्य का शाश्वत पथ दिखा सके। भारतवर्ष की यही नियति और महत्ता है कि वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के मंत्र को आत्मसात कर वैश्विक रंगमंच पर पुनः 'विश्व-गुरु' के गौरवशाली पद को सुशोभित करे।

संदर्भ सूची-

1. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) की 'नमस्ते सदा वत्सले' नामक प्रार्थना का प्रथम पद है।
2. यह श्लोक मूल रूप से **'वाल्मीकि रामायण'** के संदर्भ से है |
3. विष्णु पुराण (2.3.24) विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय से |
4. यह गीत 'भाति मे भारतम्' का ही मुख्य अंश है |
5. रश्मिरथी' के **तृतीय सर्ग** |
6. मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध काव्य कृति 'भारत-भारती' से ली गई हैं।
7. चंद्रगुप्त' नाटक के दूसरे अंक के प्रारंभ में |
8. हितोपदेश (Hitopadesha), प्रस्तावना / प्रथमारम्भ